स्त्री विमर्श और मीराकांत की वैचारिकी

- प्रो.श्रीमती राजु एस. बागलकोट

सारांश

स्त्री विमर्श भारतीय साहित्यिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण और सामाजिक दृष्टि से संवेदनशील आयाम है। यह शोध-पत्र भारतीय स्त्री विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मीरा कांत के नाटकों का विश्लेषण करता है, जिनमें नारी चेतना, पितृसत्तात्मकता के प्रति प्रतिरोध और स्त्री की आत्म-परिभाषा के स्वर मुखर होते हैं। मीरा कांत ने अपने नाटकों में न केवल स्त्री के सामाजिक उत्पीड़न को उकेरा है, बल्कि उसके आत्म-संघर्ष और सामाजिक प्रतिरोध को भी सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन नारीवादी विमर्श को भारतीय संदर्भ में देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

बीज शब्द

स्त्री विमर्श, नारीवाद, मीराकांत, पितृसत्तात्मक समाज, भारतीय नारी चेतना, आधुनिक हिंदी नाटक, घरेलू हिंसा, स्त्री सशक्तिकरण, साहित्य में नारी दृष्टिकोण

भारतीय लोकतंत्र में विचार-विमर्श की संस्कृति गहरे रूप में निहित है। जब यह विचार एक संगठित और सामाजिक रूप में आकार लेते हैं, तब उन्हें विमर्श कहा जाता है। स्त्री विमर्श, इस दृष्टि से, केवल एक सामाजिक चर्चा नहीं बल्कि सत्ता, संस्कृति और पहचान की राजनीति में स्त्री की भूमिका की पुनर्व्याख्या है। यह पितृसत्तात्मक समाज की उस सोच को चुनौती देता है, जो स्त्री को द्वितीयक, निर्भर और मौन मानता आया है। स्त्री विमर्श का अर्थ है–स्त्रियों की स्थिति, उनकी समस्याएँ, अधिकार, पहचान और सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिकाओं पर केंद्रित चिंतन और आलोचना। भारतीय सन्दर्भ में स्त्री विमर्श पश्चिमी नारीवादी आंदोलनों से प्रभावित अवश्य है, लेकिन यह विशुद्ध रूप से भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ है। भारत में स्त्री विमर्श केवल लैंगिक असमानता तक सीमित न रहकर जाति, वर्ग, धर्म, भाषा और क्षेत्रीय असमानताओं को भी समेटे हुए है। यह बहुआयामी और बहुपरतीय विमर्श है जो स्त्रियों के दमन की विविध व्यवस्थागत जड़ों को उजागर करता है।

भारत में स्त्री विमर्श ने पश्चिमी नारीवाद से प्रेरणा अवश्य ली है, परंतु इसकी समस्याएँ, संदर्भ और समाधान स्वदेशी सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों से जुड़े हैं। इस संदर्भ में मीरा कांत जैसी नाटककारों का लेखन स्त्री विमर्श को न केवल सशक्त बनाता है, बल्कि उसे मंच पर भी जीवन्त करता है।

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति समय के साथ बदलती रही है। वैदिक काल में स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था; वे वेदों का अध्ययन करती थीं, ऋषि-पत्नी और विचारक के रूप में प्रतिष्ठित थीं। लेकिन उत्तर वैदिक काल आते-आते स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों ने स्त्रियों को अधीन रखने की वैचारिक भूमिका तैयार की। मध्यकाल में पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं ने स्त्री जीवन को और भी जटिल बना दिया। आधुनिक काल में

समाज सुधारकों जैसे राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले आदि ने स्त्रियों की शिक्षा, विधवा विवाह और सामाजिक अधिकारों के पक्ष में आवाज़ उठाई। इस दौर में स्त्री विमर्श सामाजिक सुधार आंदोलन के रूप में उभरा।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में सक्रिय होने का अवसर दिया। रानी लक्ष्मीबाई, अरुणा आसफ़ अली, सुचेता कृपलानी, कस्तूरबा गांधी जैसी अनेक महिलाओं ने स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लिया। हालाँकि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं आया। संविधान में समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14, 15, 16), शिक्षा और अवसर की समानता जैसे प्रावधान होने के बावजूद स्त्रियाँ सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं में पिछड़ी रहीं। भारतीय स्त्री विमर्श मुख्यतः 1970 के दशक के बाद साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास और राजनीति जैसे क्षेत्रों में सशक्त रूप में सामने आया। यह विमर्श केवल स्त्रियों की दुर्दशा को चित्रित नहीं करता, बल्कि पितृसत्तात्मक समाज की उस संरचना की आलोचना करता है जो स्त्रियों को दोयम दर्जे का मानती है।

पितृसत्ता एक सामाजिक व्यवस्था है जिसमें पुरुष सत्ता, नियंत्रण और प्रभुत्व को प्राथमिकता दी जाती है। भारतीय स्त्री विमर्श पितृसत्ता को केवल पारिवारिक ढांचे तक सीमित न मानकर इसे धर्म, संस्कृति, राज्य, भाषा, शिक्षा और साहित्य तक फैला हुआ देखता है। भारतीय स्त्री विमर्श पश्चिमी नारीवाद की भांति केवल 'सफेद, मध्यवर्गीय स्त्री' के अधिकारों तक सीमित नहीं है। यह दलित स्त्रियों, आदिवासी स्त्रियों, मुस्लिम स्त्रियों, ग्रामीण और शहरी श्रमिक स्त्रियों की समस्याओं को अलग-अलग समझने की माँग करता है। जैसे–दलित स्त्री विमर्श में सवाल यह होता है कि केवल 'स्त्री होना' पर्याप्त नहीं, दलित और स्त्री होना दोहरा उत्पीड़न झेलना है। शरणकुमार लिंबाले, डॉ. बेबी काम्बले, बामा जैसी लेखिकाओं ने इस द्वैध उत्पीड़न पर सवाल उठाए। स्त्री विमर्श स्त्रियों को केवल पीड़िता के रूप में नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि उन्हें एक सक्रिय भूमिका, निर्णय क्षमता और आत्म-संवेदना से युक्त व्यक्ति के रूप में देखने की माँग करता है। महादेवी वर्मा, मृणाल पांडे, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान जैसी लेखिकाओं ने स्त्रियों के अंतर्द्वंद्व, संघर्ष और आत्म-संधान को साहित्य में उकेरा। स्त्री की देह पर पुरुषवादी नियंत्रण का विरोध करते हुए स्त्री विमर्श यह प्रश्न उठाता है कि स्त्री की देह केवल प्रजनन का माध्यम क्यों मानी जाए? क्यों यौनिकता पर केवल पुरुष का अधिकार हो? इस संदर्भ में मीरा, अक्क महादेवी, अमृता प्रीतम, कमला दास जैसी कवयित्रियों ने अपने लेखन में स्त्री यौनिकता को खुलकर अभिव्यक्त किया। स्त्री-विमर्श अपील करता है कि उसे केवल मनुष्य समझा जाए। न तो उसे दया का पात्र समझा जाए और न ही उपेक्षित माना जाए। इस संदर्भ में ममता कालिया कहती हैं कि, "किसी भी समाज या उसके समय की वास्तविक स्थिति जाननी हो तो उसमें स्त्री की स्थिति पर विचार करना प्रासंगिक होगा। दलित-प्रश्न की तरह ही नारी-प्रश्न आज ज्वलंत विषय है। ये दो दमित वर्ग आज अपने अस्तित्व और अस्मिता पर स्वयं विचार करने के लिए जागे हैं। इनकी समस्त प्रश्नाकुलतायें मनुष्य को और अधिक मनुष्य अर्थात् मानवीय बनाने के प्रयत्न हैं। ऐसी स्थिति में पूर्व में उन पर लिखे गए पर अगर उन्हें संदेह और असंतोष है, तो उसे सुनना ज़रूरी है। जब स्त्री को लगा

की उनका अस्तित्व, स्थान, अधिकार और आज़ादी संकट में है, उसे अपने विचारों को अभिव्यक्ति देनी पड़ी। इसीलिए स्त्री-विमर्श का मूल स्वर प्रतिरोध का रहा है।"[1] भारतीय स्त्री विमर्श धर्म की आलोचना भी करता है, विशेषकर उन धार्मिक मान्यताओं की, जो स्त्रियों को अधीन और अपवित्र मानती हैं। मुस्लिम स्त्रियों के संदर्भ में 'तीन तलाक', पर्दा प्रथा, और बहुविवाह जैसे मुद्दों पर लेखिकाओं ने प्रश्न उठाए हैं। शाह बानो प्रकरण और उसके बाद हुए सामाजिक आंदोलनों ने मुस्लिम स्त्रियों के अधिकारों पर विमर्श को नया मोड़ दिया।

लेखिका मीरा कांत के नाटकों में यह दृष्टि गहराई से परिलक्षित होती है। उन्होंने स्त्री के भीतर की चेतना, सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध और एक नई अस्मिता के निर्माण को मंच पर जीवंत किया है। मीरा कांत हिंदी की उन विरल नाट्यकारों में हैं जिन्होंने अपने नाटकों में स्त्री को केवल पीड़िता के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रतिरोधी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका नाटक 'आरोप' भारतीय समाज में स्त्री के चरित्र हनन, सामाजिक न्याय की विफलता और नैतिकता की दोहरी परिभाषा पर सवाल उठाता है।उनका लेखन केवल भावनात्मक अपील नहीं करता, बल्कि विश्लेषणात्मक गहराई के साथ उन सामाजिक संरचनाओं को उजागर करता है जो स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित रखती हैं।

मीरा कांत का नाटक 'अमीत हाज़िर हो' घरेलू हिंसा और यौन शोषण जैसे विषयों को गहराई से प्रस्तुत करता है। पात्र तनु अपने ही पिता द्वारा यौन शोषण की शिकार होती है। यह घटना एक निजी त्रासदी न रहकर एक व्यापक सामाजिक यथार्थ का प्रतीक बन जाती है। नाटक यह प्रश्न उठाता है कि जब घर–जो स्त्री के लिए सुरक्षा का प्रतीक होना चाहिए–खुद एक हिंसक स्थान बन जाए, तब स्त्री कहाँ जाएगी? 'अंत हाज़िर हो' नाटक में उठाई गई यौन-शोषण की समस्या के संदर्भ में ममता धवन कहती हैं कि, "'अंत हाज़िर हो' नाटक पिता-पुत्री के बेहद कोमल, पवित्र रिश्ते के भीतर एक पिता की पुत्रेष्णा, लड़कियों के प्रति हेय और घृणा की भावना और उत्तरदायित्वहीनता के कारण उपजी काई का बेहद स्पष्ट और घोर यथार्थपूर्ण चित्रण करता है। समाज में पिता-पुत्री, माँ-बेटे के रिश्ते अत्यंत सुरक्षित स्वीकार किए गए हैं। इन संबंधों के अतिरिक्त अन्य सभी रिश्ते आज बेमानी और अविश्वसनीय होते जा रहे हैं। संबंधों की अपनी पहचान व उनके प्रति स्पष्ट दृष्टि का अभाव आज के बाजारवादी युग का एक दुखद प्रभाव हुआ है। लेकिन पिता-पुत्री जैस पाक रिश्तों पर भी अब कालिमा छाने लगी है। इसकी पड़ताल सजग नाट्य लेखिका मीरा कांत अपने नाटक 'अंत हाज़िर हो' में करती हैं।"[2] यह मीरा कांत के लेखन की ताकत है कि वे एक परिवार की कहानी को सामाजिक विमर्श में बदल देती हैं।

नाटक का पात्र 'पापा' एक प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी हैं, लेकिन उनका आचरण सामाजिक सम्मान के मुखौटे के पीछे छिपा वह अंधकार है जो लड़कियों को सिर्फ देह मानता है। तीन-तीन बेटियों के पिता

[1] कालिया, ममता. भविष्य का स्त्री विमर्श. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015. पृष्ठ संख्या-14

[2] धवन, ममता. स्त्री-आकांक्षा और मीराकांत के नाटक, हिंदी नाटक : नई परख

होते हुए भी वे उन्हें 'पराया धन' और 'बोझ' समझते हैं। नशे की हालत में वे अपने भीतर की कड़वाहट और मानसिक विकृति को इन शब्दों में उगलते हैं, "बीज बोओ....उसे सींचते रहो सालो...पालो पोसो...जब लहलहाने लगे तो किसी और की नज़र कर दो! तुम भी तो भुगत रहे हो... दस लाख! साला... पालें हम, फल खाएं दूसरे!"[3] यह पितृसत्तात्मक मानसिकता केवल कन्या के विवाह या दहेज तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उनके स्त्रीत्व को भी हेय दृष्टि से देखने लगती है। उनके लिए बेटियाँ केवल सौदे की वस्तुएँ हैं, उन्हें संजोया नहीं, बल्कि सौंपा जाना है। 'पापा' की यह मानसिकता इस बात को भी उजागर करती है कि शिक्षित और प्रतिष्ठित समाज में भी स्त्रियों के प्रति सोच कितनी विकृत हो सकती है। नाटक की माँ जो लकवाग्रस्त हैं और बड़ी बेटी अनु, 'पापा' के यौन शोषण का विरोध नहीं कर पातीं। अनु की छोटी बहन तनु, केवल पाँच वर्ष की आयु में ही पिता द्वारा यौन हिंसा का शिकार हो जाती है और अंततः आत्महत्या कर लेती है। यह घरेलू हिंसा और पारिवारिक व्यभिचार की वह सच्चाई है जिसे आमतौर पर भारतीय समाज नकारता है।

मीरा कांत इस नाटक के माध्यम से उस स्त्री की त्रासदी को मंच पर लाती हैं जो अपने ही घर में असुरक्षित है, जहाँ उसका सबसे बड़ा शत्रु उसका पिता है। बुज़ुर्ग महिला (वृद्धा) का पात्र भी इस त्रासदी का दूसरा पहलू सामने लाता है। वह अपनी पोती के साथ हो रहे बलात्कार को केवल इसलिए अनदेखा करती है क्योंकि अगर उसने मुंह खोला तो घर चलाना मुश्किल हो जाएगा। उसका बेटा जिम्मेदारी से भाग चुका है और वह स्वयं असहाय है। यह पात्र उस सामाजिक दबाव को दर्शाता है जिसमें महिलाएं न सिर्फ खुद पर बल्कि अपने बच्चों पर हो रहे अत्याचारों को भी सहने को मजबूर होती हैं। स्त्रियाँ और बच्चे 'सॉफ्ट टारगेट' होते हैं क्योंकि वे आर्थिक और सामाजिक रूप से निर्भर होते हैं। यह निर्भरता ही उन्हें चुप रहने को विवश करती है। घरेलू हिंसा और यौन शोषण को सहना उनके लिए कोई विकल्प नहीं, बल्कि विवशता बन जाती है।

नाटक में छोटी की डायरी का एक अंश विशेष रूप से मार्मिक है, जिसमें वह अपने साथ हुए यौन उत्पीड़न को स्मृतियों में दर्ज करती है। वह लिखती है कि कैसे उसका पिता उसकी बाँहों पर रेज़र से वार करता है और उस पर एक अश्लील मुस्कान फेंकता है। यह दृश्य न केवल शारीरिक पीड़ा को, बल्कि एक बालिका की आत्मिक और मानसिक नग्नता को दर्शाता है, जब वह पूरी तरह से नंगी, असहाय और अपमानित महसूस करती है। "उस मुस्कान से जैसे मेरी देह ही उघड़ गई थी। ऐसा लगा जैसे कपड़े बदलते हुए कमरे का दरवाज़ा बंद करना भूल गई हूँ। मैं निर्वस्त्र हूँ और दरवाजे पर पापा खड़े हैं वैसे ही मुस्कुराते हुए...."[4] यह दृश्य न केवल पितृसत्ता की चरम विकृति को उजागर करता है, बल्कि दर्शकों के भीतर गहरे नैतिक झटके भी उत्पन्न करता है। मीरा कांत की लेखनी इस पीड़ा को केवल दर्शाने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समाज की चुप्पी, अपनों की मूकता और न्याय की अनुपलब्धता पर तीव्र प्रश्नचिह्न भी लगाती है। भारत में बाल यौन शोषण एक कटु सच्चाई है, जो

[3] कांत, मीरा. अंत हाज़िर हो. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2012. पृष्ठ संख्या - 65.

[4] कांत, मीरा. अंत हाज़िर हो. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2012. पृष्ठ संख्या - 57.

संपन्न, शिक्षित, और शहरी घरों में भी घटित होता है। एक शोध के अनुसार, 76% महिलाओं ने माना कि उन्हें अठारह वर्ष की आयु से पहले किसी न किसी रूप में यौन हिंसा का सामना करना पड़ा। 'अंत हाज़िर हो' इस सामूहिक मौन को तोड़ता है। मीरा कांत उन दुर्लभ रचनाकारों में से हैं जिन्होंने इस मुद्दे को मंच पर लाकर न केवल स्त्रियों की पीड़ा को स्वर दिया, बल्कि समाज को आत्मालोचना के लिए भी विवश किया। यह नाटक केवल एक कथा नहीं, बल्कि हमारे समय की वह करुण चीख है जिसे अब अनसुना नहीं किया जा सकता।

मीरा कांत केवल वर्तमान की समस्याओं को नहीं उठातीं, वे सांस्कृतिक और पौराणिक स्त्रियों के पुनर्पाठ के माध्यम से भी स्त्री विमर्श को समृद्ध करती हैं। वे इतिहास और मिथकों में उपस्थित स्त्रियों को आज की दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करती हैं, सीता, द्रौपदी या अहिल्या उनके लेखन में नए रूपों में जीवंत होती हैं। मीरा कांत ने अपने नाटक के माध्यम से स्त्रियों के प्रति समाज में व्याप्त पुरुषवादी दृष्टिकोण के उस नग्न यथार्थ को सामने लाया है, जिसे अब तक दबा और अनदेखा किया जाता रहा है। यह नाटक अपने संक्षिप्त कलेवर में पारिवारिक संबंधों की विकृति और उनके भीतर छिपे कलुषित इरादों को उजागर करता है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे मासूम बच्चियों का तन और मन निरंतर अपने ही परिजनों की दरिंदगी से घायल होता रहता है। आज भी असंख्य बालिकाएं अपने घरों में, जिनसे वे सुरक्षा की उम्मीद करती हैं, वहीं बार-बार पशुवत प्रवृत्तियों का शिकार बन रही हैं। सुषमा भटनागर लिखती हैं, "छोटी का अपने सिर पर भैंस के सींग उग आने की भयातुर स्थिति, उसका पिता की किताबों को बीच से चीर देना, उसका वाचिक आक्रोश और अंततः आत्मघात, किशोर असामान्य व्यवहार की क्रमिक अंतर्यात्रा है। छोटी के पिता की कुत्सित लिप्सा और छोटी और सलोनी का अवसाद वास्तव में असामान्य मनोविज्ञान की ही दो सरणियाँ हैं। मीरा कांत का यह नाटक इन दोनों ही सिरों के लिए एक नए अंत का आकांक्षी है। यह सनसनी फैलाने अथवा संबंधों की उलटबाँसियाँ पेश करके बोल्ड कहलाए जाने का करतब न होकर, ठहर कर सोचने का अनुष्ठान है।"[5] यह नाटक न केवल 'पारिवारिक व्यभिचार' जैसे जघन्य और वर्जित विषय को साहसपूर्वक उठाता है, बल्कि किशोर मानसिकता पर इस अत्याचार के प्रभाव और उसके भीतर उपजी व्यथा को भी मार्मिकता से चित्रित करता है।

नाटक 'काली बर्फ' में आतंकवाद जैसे विषय को मीरा कांत स्त्री की संवेदना के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। नाटक में बर्फ एक प्रतीक है—जमी हुई संवेदना, जड़ता, और असुरक्षा का। यह नाटक राजनीतिक नहीं, मानवीय और स्त्री-केंद्रित दृष्टिकोण से समस्या को देखने का प्रयास है। यह स्त्री विमर्श का विस्तार है, जहाँ केवल लैंगिक असमानता नहीं, बल्कि युद्ध, विस्थापन, भय और अस्तित्व का प्रश्न भी जुड़ता है।

नाटक 'ईहामृग' में मीरा कांत स्त्री की मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को उजागर करती हैं। यह नाटक पंचतत्वों के संतुलन, मानव स्वभाव और संबंधों की गहराइयों की पड़ताल करता है। मीरा कांत की यह विशेषता है कि वे स्त्री को केवल सामाजिक प्राणी के रूप में नहीं, एक मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक,

[5] भटनागर, सुषमा. भूमिका, अंत हाज़िर हो. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2012. पृष्ठ संख्या - 10-11.

और आत्मसजग सत्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं। मीरा कांत का नाटक 'ईहामृग' एक प्रभावशाली कृति है, जो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करता है। 'ईहामृग' शब्द का तात्पर्य है, ऐसी इच्छा जो पूरी होकर भी अधूरी रह जाती है। नाटक में स्नेहगंधा, कुमारिल और अनिवद्ध जैसे पात्रों के माध्यम से लेखिका ने उस यथार्थ का चित्रण किया है, जहाँ मनुष्य अपनी आकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति की निरंतर दौड़ में लगा रहता है, परंतु उसकी यह दौड़ एक मृगतृष्णा बनकर रह जाती है, न कभी पूर्ण होती है, न संतोष देती है।

नाटक का केंद्रबिंदु केवल ऐतिहासिक घटनाओं या पात्रों की पुनर्रचना नहीं है, बल्कि यह आधुनिक युग की उस विडंबना को सामने लाता है जहाँ मनुष्य भौतिक संसाधनों के पीछे भागते-भागते अपने वर्तमान को खो बैठता है। वह न अपने पास उपलब्ध सुखों का आनंद ले पाता है, न ही जीवन की छोटी-छोटी खुशियों को पहचान पाता है। लेखिका ने अत्यंत मार्मिक ढंग से इस सत्य को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है:

"इच्छाएं मृगतृष्णा-सी क्यों
पाकर भी कब पता है मन
रंग सहेजे पर एकाकी।
ईहामृग-सा है यह जीवन।"[6] यह कथन आज के उस व्यक्ति की सचाई है जो और अधिक की लालसा में अंधाधुंध दौड़ रहा है, यह जाने बिना कि इस दौड़ की कोई स्पष्ट मंज़िल नहीं है। नाटक केवल मानवीय इच्छाओं की मृगतृष्णा तक सीमित नहीं रहता, यह सत्ता और राजनीति के अनैतिक स्वरूप को भी उजागर करता है। पात्र मार्तंड अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए अपनी ही बहन स्नेहगंधा को एक साधन के रूप में प्रयोग करना चाहता है। जाज जैसे पात्र भी सत्ता प्राप्ति के लिए बिना किसी नैतिक बाध्यता के अफसरशाही और राजनीति की गलियों में उतर जाते हैं। यह दर्शाता है कि सत्ता की भूख कैसे संबंधों और नैतिक मूल्यों को निगल जाती है।

स्त्री-विमर्श के संदर्भ में भी नाटक महत्वपूर्ण संकेत देता है। विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह को समाज आज भी सहजता से स्वीकार नहीं करता, जबकि यही नियम पुरुषों पर लागू नहीं होता। पात्र स्थिरमति इसका उदाहरण है, जो अपने पति के संन्यास लेने के बाद अपनी मृत बहन के पति के समीप आती है। समाज इस सम्बन्ध को सम्मान नहीं देता, जिसके कारण वह अपने पुत्र अनिवद्ध के जीवन को भी संपूर्ण नहीं बना पाती। परिणामस्वरूप अनिवद्ध प्रेम और अपनत्व से वंचित रह जाता है और अपने अतीत की कटु स्मृतियों से बाहर नहीं निकल पाता किंतु नाटक केवल निराशा या विडंबना तक नहीं रुकता। अंततः पात्र आत्मबोध और आत्मस्वीकृति की ओर अग्रसर होते हैं। अनिवद्ध जैसे पात्र, जो जीवन की विफलताओं से घिरे हुए हैं, अंततः निराशा से बाहर निकलते हैं और सकारात्मकता के साथ अपने जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं। इस तरह नाटक जीवन के यथार्थ, संवेदना और संघर्ष को एक समग्र रूप में प्रस्तुत करता है।

[6] कांत, मीरा. ईहामृग. सार्थक प्रकाशन, दिल्ली, 2003 पृष्ठ संख्या 64-65.

'ईहामृग' केवल ऐतिहासिक या सामाजिक आलोचना नहीं है, बल्कि यह एक दार्शनिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है – कि जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह नहीं कि इच्छाएँ अधूरी रह जाती हैं, बल्कि यह है कि वे पूरी होकर भी हमें संतोष नहीं देतीं। यही वह बिंदु है जहाँ नाटक हर पाठक और दर्शक को आत्मावलोकन के लिए प्रेरित करता है।

निष्कर्ष

मीरा कांत का नाट्य साहित्य भारतीय स्त्री विमर्श को नया आयाम देता है। उन्होंने स्त्री को केवल संघर्ष की प्रतीक नहीं, बल्कि चेतना, आत्मगौरव और प्रतिरोध की प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके नाटकों में वर्तमान सामाजिक यथार्थ, पौराणिक प्रतीकों की पुनर्व्याख्या, और मानव मन की गहराई। उनकी रचनाएँ पाठकों और दर्शकों को केवल भावुक नहीं बनातीं, बल्कि सोचने और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करती हैं। मीरा कांत का लेखन नारीवादी साहित्य की मुख्यधारा में एक सशक्त और अनिवार्य उपस्थिति है।

संदर्भ सूची

1. कांत, मीरा. अंत हाज़िर हो. राजकमल प्रकाशन, 2010.
2. कांत, मीरा. काली बर्फ. भारतीय ज्ञानपीठ, 2015.
3. कांत, मीरा. ईहामृग. सार्थक प्रकाशन, दिल्ली, 2003.
4. मिश्रा, कुमकुम. “भारतीय स्त्री विमर्श और समकालीन साहित्य.” हिंदी समय, vol. 12, no. 2, 2020.
5. कालिया, ममता. भविष्य का स्त्री विमर्श. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
6. अग्रवाल, बिंदु. भारतीय नारीवाद: सिद्धांत और व्यवहार. वाणी प्रकाशन, 2017.
7. Chakravarti, Uma. Gendering Caste: Through a Feminist Lens. Stree, 2003.
8. Tharu, Susie, and K. Lalita, eds. Women Writing in India: 600 B.C. to the Present. Oxford University Press, 1991.
9. Nayar, Pramod K. Contemporary Literary and Cultural Theory: From Structuralism to Ecocriticism. Pearson, 2010.

प्रो. श्रीमती राजु एस. बागलकोट
फ्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी अध्ययन विभाग,
कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर - 586108
मो.नं- 9440932181, मेलः rbagalkot@rediffmail.com